International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.379 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 9, Issue 6, November 2022 |

संस्कृत के नाटकों में प्रकृति चित्रण

MRS. RINKY GUPTA

ASSISTANT PROFESSOR, DEPT. OF SANSKRIT, GOVT. GIRLS COLLEGE, KARAULI, RAJASTHAN, India

सार

संस्कृत नाटकों में प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगत होता है । अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का इन नाटकों में सुन्दर समन्वय किया गया है । अन्तः प्रकृति की सूक्ष्म एवं सुकुमार भावनाओं के चित्रण के लिए बाह्य प्रकृति चित्रफलक का कार्य करती है । प्रकृति का मानवीकरण भी संस्कृत रुपकों की अपनी विशेषता रही है।

परिचय

महाकवि कालिदास प्रकृति के उपासक हैं। वे प्रकृति के अन्नय प्रेमी हैं, उन्होंने अंत: प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति दोनों का चित्रण किया है। उनका यह चित्रण आत्मानुभूति एवं सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है। यद्यपि महाकवि ने कहीं-कहीं प्रकृति का भयावह रूप भी चित्रित किया, किंतु प्रकृति का सुकुमार रूप उन्हें अधिक प्रिय है।[1,2,3]

प्रकृति का चित्रण

कालिदास ने अपने समस्त काव्यों एवं नाटकों में प्रकृति का निरूपण तो किया ही है, किंतु स्वतंत्र रूप से प्रकृति के चित्रण के लिए ऋतुसंहार की रचना की। ऋतुसंहार में कवि ने बाह्य प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण की अपेक्षा मानव-मन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन अधिक किया है, फिर भी ऋतुओं का स्वतंत्र चित्रण उनके प्रकृति-प्रेम का द्योतक है। ऋतुसंहार के प्रथम पद्य में ग्रीष्म ऋतु का बड़ा ही सजीव चित्रण है-

प्रचण्डसूर्य: स्पृहणीयचन्द्रमा: सदावगाहक्षतवारिसञ्चय:।
दिनांतरम्योस्म्युपशांतमन्मथों निदाद्यकालोस्यमुपागत: प्रिये॥[1]

- प्रिये! ग्रीष्म ऋतु आ गयी है। सूर्य की किरणें प्रचण्ड हो गयी हैं। चन्द्रमा सुहावना लगने लगा है। निरंतर स्नान के कारण कुँओं-तालाबों का जल प्राय: समाप्त हो चला है। सायंकाल मनोरम लगने लगा है तथा काम का वेग स्वयं शांत हो गया है। इसी प्रकार कवि का वर्षा तथा अन्य ऋतुओं का वर्णन भी सजीवता एवं कमनीयता से परिपूर्ण है। मेघदूत में तो कवि ने प्रकृति एवं मानव में तादात्म्य स्थापित कर दिया है। पूर्वमेघ में प्रधानतया प्रकृति के बाह्य रूप का चित्रण है, किंतु उसमें मानवीय भावनाओं का संस्पर्श है, मेघदूत तो वर्षा ऋतु की ही उपज है। वहाँ वर्षा से प्रभावित होने वाले समस्त जड़-चेतन पदार्थों का निरूपण है। मेघ जिस-जिस मार्ग से होकर आगे निकल जाता है उस-उस मार्ग में अपनी छाप छोड़ जाता है-

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुला: कन्दलीश्चानकच्छम्।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाध्राय चोर्व्या:।

सारङ्गास्ते जललवमुच: सूचयिष्यंति मार्गम्॥[2]

- जल बरसने के कारण पुष्पित कदम्ब को भ्रमर मस्त होकर देख रहे होंगे, प्रथम जल पाकर मुकुलित कन्दली को हरिण खा रहे होंगे और गज प्रथम वर्षाजल के कारण पृथिवी से निकलने वाली गन्ध सूँघ रहे होंगे-इस प्रकार भिन्न-भिन्न क्रियाओं को देखकर मेघ के गमन मार्ग का स्वत: अनुमान हो जाता है। प्रकृति से मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही कारण है कि वह मनुष्य के अंत:करण को प्रभावित करती है। मेघदूत में कवि ने इसी तथ्य को उजागर किया-

मेघालोके भवति सुखिनोस्प्यन्यथावृत्ति चेत:।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे॥[3]

- मेघ को देख लेने पर तो सुखी अर्थात् संयोगी जनों का चित्त कुछ का कुछ हो जाता है फिर वियोगी लोगों का क्या कहना। कालिदास ने प्रकृति को मनुष्य के सुख-दु:ख में सहभागिनी निरूपति किया है। विरही राम को लताएँ अपने पत्ते झुका-झुका कर सीता के अपहरण का मार्ग बताती हैं, मृगियाँ दर्भाकुर चरना छोड़कर बड़ी-बड़ी आँखें दक्षिण दिशा की ओर लगाये टुकुर-टुकुर ताकती रह जाती हैं।[4]

प्रकृति चेतन एवं भावनायुक्त

- कालिदास प्रकृति को चेतन एवं भावनायुक्त पाते हैं। पशु-पक्षी आदि तो चेतनवत व्यवहार करते ही है, सम्पूर्ण चराचर प्रकृति भी मानव की भाँति व्यवहार करती दिखायी देती हैं। महाकवि ने मेघ को दूत बनाकर धूम, अग्नि, जल, पवन के सम्मिश्रण रूप जड़ पदार्थ को मानव बना दिया है। वे प्रकृति में न केवल मानव की बाह्या आकृति का आरोप करते हैं अपितु उसमें सुख:दु:खादि भावों की भी सम्भावना करते हैं। [4,5,6]वे प्रकृति को प्राय: प्रेमी अथवा प्रेमिका के रूप में देखते हैं। मेघदूत में उज्जयिनी की ओर जाते हुए मेघ को मार्ग में पड़ने वाली निर्विन्ध्या नदी विभिन्न हाव-भाव से आकृष्ट करेगी-

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणि काञ्चीगुणाया:
संसर्पंत्या: स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभे:।
निर्विन्ध्याया:पथि भव रसाभ्यंतर: संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु॥[5]

- हे मेघ! तरंगों के हलचल के कारण शब्दायमान पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी को धारण करने वाली, स्खलित प्रवाह के कारण सुन्दरतापूर्वक बहने वाली अर्थात् मस्त होकर चलने वाली और भँवर रूप नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी रूपी नायिका से मिलकर तुम रस अवश्य प्राप्त करना, क्योंकि कामिनियों का हाव-भाव प्रदर्शन ही रतिप्रार्थना वचन होता है।
- महाकवि कालिदास ने प्रकृति के श्रेष्ठ तत्त्वों को ग्रहण कर उनकी अप्रस्तुत रूप में योजना की है। वे पात्रों को उपस्थित करने के लिए प्रकृति के सुन्दर तत्त्वों से सादृश्य स्थापित करते हैं। रघुवंश में राजा रघु के मुख-सौन्दर्य के वर्णन के लिए वे प्रकृति के सुन्दरतम एवं प्रसिद्ध उपमान चन्द्र का आश्रय लेते हैं।[7,8,9]

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे। तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयो:॥[6]

- शरद ऋतु में रघु के खिले हुए मुख और उज्ज्वल चन्द्रमा को देखकर दर्शकों को एक-सा आनन्द मिलता था। कवियों ने नारी के शरीर की तुलना प्राय: लता से की है, किंतु कुमारसम्भव में कालिदास पार्वती को चलती-फिरती एवं फूलों से लदी लता के रूप में देखते हैं-

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव॥[7]

प्रकृति का उपदेशिका रूप

महाकवि कालिदास प्रकृति को उपदेशिका रूप में भी पाते हैं। वे प्रकृति से प्राप्त होने वाले सत्य का स्थान-स्थान पर उल्लेख करते हैं जो मानव जीवन का मार्ग-निर्देश करती है एवं आदर्श उपस्थापित करती है। मेघ बिना कुछ कहे चातकों को वर्षा जल प्रदान कर उनका उपकार करता है-

नि:शब्दोस्पि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य:।
प्रत्युक्त हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव॥[8]

- पपीहे के जल माँगने पर मेघ बिना उत्तर दिये उन्हें सीधे जल दे देता है। सज्जनों का यह स्वभाव होता है कि जब उनसे कुछ माँगा जाय तो वे मुँह से कुछ कहे बिना, काम पूरा करके ही उत्तर दे देते हैं।
- रघुवंश में कालिदास को जल के स्वभाव से शिक्षा मिलती है। जल तो प्रकृत्या शीतल है, उष्ण वस्तु के सम्पर्क से भले ही कुछ क्षण के लिए जल में उष्णता उत्पन्न हो जाए। इसी प्रकार महात्मा भी प्रकृति से क्षमाशील होते हैं, अपराध करने पर वे कुछ क्षण के लिए ही उद्विग्न होते हैं-

स चानुनीत: प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मुदतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसम्प्रयोगाच्छैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य॥[9]

प्रकृति के सहज सौन्दर्य, मानवीय राग, कोमल भावनाओं तथा कल्पना के नवनवोन्मेष का जो रूप कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में मिलता है, वह भारतीय साहित्य का शिखर कहा जा सकता है। कवि ने सन्ध्या और रात्रि का वर्णन हिमालय के पावन प्रदेश में शिख के गरिमामय वचनों के द्वारा पार्वती को सम्बोधित करते हुए कराया है, [10,11,12]और प्रसंग, पात्र, देशकाल के अनुरूप प्रकृति का इतना उदात्त और कमनीय वर्णन विश्व साहित्य में दुर्लभ कहा जा सकता है। पश्चिम में डूबते सूर्य की रश्मियां सरोवर के जल में लम्बी-लम्बी होकर प्रतिबिम्बित हो रही है, तो लगता है कि अपनी सुदीर्घ परछाइयों के द्वारा विवस्वान भगवान ने जल में सोने के सेतुबन्ध रच डाले हो।[10]

- वृक्ष के शिखर पर बैठा मयूर ढलते सूर्य के घटते चले जाते सोने के जैसे गौरमण्डलयुक्त आतप को बैठा पी रहा है।[11]
- पूर्व में अंधेरा बढ़ रहा है, आकाश के सरोवर से सूर्य ने जैसे आतपरूपी जल को सोख लिया, तो इस सरोवर के एक कोने में जैसे कीचड़ ऊपर आ गया हो।[12]
- सूर्य के किरणों का जाल समेट लिया है, तो हिमालय के निर्झरो पर अंकित इन्द्रधनुष धीरे-धीरे मिटते जा रहे हैं।[13]

कमल का कोश बन्द हो रहा है, पर भीतर प्रवेश करते भ्रमर को स्थान देने के लिए कमल जैसे मुंदते-मुंदते ठहर गया है।[14]

- अस्त होते सूर्य की किरणें बादलों पर पड़ रही हैं, उनकी नोंकें रक्त, पीत और कपिश हो गयी हैं, जैसे सन्ध्या ने पार्वती को दिखाने के लिये तूलिका उठा कर उन पर रंग-बिरंगी छवियाँ उकेर दी हों।[15]

अस्त होते सूर्य ने अपना आतप सिंहों के केसर और वृक्षों के किसलयों को जैसे बाँट दिया है।[16]

- सूर्यास्त होने पर तमालपंक्ति सन्ध्यारूपी नदी का तट बन जाती है और धातुओं का रस उसका जलप्रवाह[17] ऊपर, नीचे,आगे, पीछे जहाँ देखो अंधेरा ही आँखों में भरता है, तिमिर के उल्ब में लिपटा संसार जैसे गर्भस्थ हो गया हो।[18]
- कालिदास की कल्पना खेतों और खलिहानों में रमती है, प्रकृति के सहज सौन्दर्य का मानव-सौन्दर्य से और कृत्रिम साज-सज्जा से उत्कृष्ट पाती है। कुमारसम्भव में चन्द्रमा की किरणों के लिये जौ के ताजा अंकुर का उपमान देकर उन्होंने मानों स्वर्ग को धरती से मिला दिया है-

शक्यमोषधिपतेर्नवोदया: कर्णपूरचनाकृते तव।
अप्रगल्भयवसूचिकोमलाश्छेत्तुमग्रनखसम्पुटै: करा॥[19]

- कहीं पर शिव को वृक्षों की टहनियों से बिछल (फिसल) कर छन-छन कर धरती पर गिरती चाँदनी के थक्के वृक्षों से टपक पड़े फूलों से लगते हैं, जिन्हें उठा-उठा कर पार्वती के केशों में सजाने का उनका मन होने लगता है-

शक्यमङ्गुलिभिरुत्थितैरध: शाखिना पतितपुष्पपेशलै:।
पत्रजर्जरशशिप्रभालवैरेभिरुत्कचयितुं तवालकान्॥[20]

- प्रकृति में मानवीय राग, करुणा और हृदय की कोमलता के दर्शन कालिदास अपनी विश्वदृष्टि के द्वारा ही कर सके हैं। अंधेरा रात्रि रमणी का जुड़ा है, जिसे चन्द्रमा अपने करों से बिखेर देता है, और फिर उस रमणी के सरोज लोचन वाले मुख को उठा कर वह चूम लेता है-

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभि:।
कुडमलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीव रजनीमुखं शशी॥[21]

- उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति उत्कृष्ट संसृष्टि कवि ने इस प्रकार के प्रकृति-चित्रणों में की है। उक्त पद्य में 'कुडमलीकृतसरोजलोचनं' कामिनी का लज्जा से नेत्र मूंदने का चित्र होने से वल्लभदेव के अनुसार स्वभावोक्ति है, जबकि 'चुम्बतीव' में समासोक्ति तथा उत्प्रेक्षा दोनों अलंकार आ गये हैं।
- महाकवि कालिदास ने यद्यपि प्राय: प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है, किंतु कुमारसम्भव के वर्षा चित्रण में भयावहता दर्शनीय है-[13,14,15]

घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगांत-
कालानलप्रबलधूमनिभो नभोसन्ते।

गर्जारवैर्विघटयन्नवनीधराणां
शृङ्गाणि मेघनिवहो घनमुज्जगाम॥[22]

- कार्तिकेय के वारुणास्त्र चलाते ही भयंकर अंधेरा करती हुई प्रलय की आग से उठे हुए धुँए के समान ऐसी काली-काली घटायें आकाश में छा गयीं जिनके गर्जन से पहाड़ की चोटियों तक दरारें पड़ गयीं।

विचार-विमर्श

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।7.4।।

हिंदी अर्थ:- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश — ये पञ्चमहाभूत और मन, बुद्धि तथा अहंकार — यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी 'अपरा' प्रकृति है। हे महाबाहो ! इस अपरा प्रकृतिसे भिन्न जीवरूप बनी हुई मेरी 'परा' प्रकृतिको जान, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है।

पर्यावरणनाशेन नश्यन्ति सर्वजन्तव: ।
पवन: दुष्टतां याति प्रकृतिविकृतायते ।।

हिंदी अर्थ:- हमारे पर्यावरण के प्रदूषण (विनाश) के कारण सभी प्राणी नष्ट हो जाते हैं, हवाएं ख़राब हो जाती हैं और प्रकृति शत्रुतापूर्ण हो जाती है।

भुक्त्वा यान्ति च पञ्चत्वं, दुष्प्लास्टिकमजैविकम् ।।
पशवोऽनुर्वरा भूमिर्जायते ज्वालिते विषम् ।।

हिंदी अर्थ:- अर्थात इस अजैविक(Inorganic) प्लास्टिक को खाकर मर जाते हैं, यह धरती इससे बंजर हो जाती है और इसे जलाने पर विष(ज़हर) ही उत्पन्न होता है।

संरक्षेत् दूषितो न स्याल्लोकः मानवजीवनम् ।
न कोऽपि कस्यचिद् नाशं, कुर्यादर्थस्य सिद्धये ।।

हिंदी अर्थ:- अर्थात्| संसार प्रदूषित न हो। मानव जीवन सुरक्षित रहे। धन की सिद्धि के लिए (धन प्राप्ति के लिए) कोई भी किसी का(प्रकृति का) नुकसान न करे।[16,17,18]

परिणाम

मनुष्य जीवन में सौंदर्य का महत्व है। सौंदर्य कला का मुख्य तत्व है। कलात्मक सृजन के लिये भी मूल ध्येय सौंदर्य है। सौंदर्य का सृजन कला का मूल कर्म है। उपनिषदों में कहा गया है कि बलहीन को आत्म उपलब्धि नहीं होती। सृजन पुष्ट शरीर द्वारा ही संभव है। शरीर से ही उत्कृष्ट संगीत संभव है और गीत-संगीत से ही कला की यात्रा। सृजन में शरीर के सभी अंग सक्रिय होते हैं। इसी तरह संगीत में वाद्य यंत्रों से काम लेते समय भी शरीर के ही अंग काम करते हैं। गीत गायन में पूरा स्वर यंत्र काम करता है। चित्र बनाते समय भी शरीर की भूमिका है। सौंदर्य सृजन और दर्शन में आंख और मन की भूमिका है। आंख का स्वस्थ होना जरूरी है। इसी तरह से सुनने की शक्ति भी अनिवार्य है। शरीर का प्रत्येक अंग कला सृजन में हिस्सा लेता है। सृजन के लिए अनिवार्य है।
महाभारत शांति पर्व में प्रकृति और उसके विकारों का सुंदर वर्णन है। कला के लिए भी स्वस्थ शरीर से ही संभव है। महाभारत में बताते हैं कि इस पृथ्वी को सौंदर्य रसों, गंधों सौंदर्य और प्राणियों का कारण समझना चाहिए। मनुष्य प्रकृति का हिस्सा है। पांच महाभूतों से यह प्रकृति बनी है। मनुष्य भी पांच तत्वों से बना है। भृगु बताते हैं, ''प्राणियों का शरीर इन पांच महाभूतों की ही प्रेरणा है।'' आगे कहते हैं इसमें गति, वायु का हिस्सा है। मनुष्य शरीर के भीतर रिक्त भाग आकाश का अंश है। मनुष्य शरीर का ताप अग्नि की कृपा है। मनुष्य शरीर के रक्त का मूल जल का अंश है और हड्डी मांस आदि पदार्थ पृथ्वी के अंश हैं।'' शरीर में प्रत्येक तत्व से पांच चीजें बनती हैं। [19,20,21]त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा, श्नायु तंत्र पृथ्वी मय है। तेज, क्रोध, अग्नि, ऊष्मा और जठराग्नि अग्निमय है। कान, आंख, मुंह, हृदय और पेट आकाशमय है। कफ, पित्त, पसीना, चर्बी और रक्त ये जल रूप हैं। वायु भी पांच रूप वाली है। इन पांच रूपों का नाम प्राण, ज्ञान, अपान, समान- उदान ये पांच प्रकृति के रूप हैं। गंध, स्पर्श रस रूप में पृथ्वी में हैं। पृथ्वी का मुख्य गुण गंध है। इसमें अनुकूल, प्रतिकूल, मधुर, कटु स्निग्ध, रुचि आदि 09 भेद हैं।

प्रकृति का प्रत्येक अंश ध्यान देने योग्य है। सौंदर्य आकर्षित करता है। सौंदर्य का संबंध रूप आंख से है। रूप के सोलह भेद बताये गये हैं। इन भेदों का संबंध कला सृजन से है। प्रकृति के प्रपंच में सबसे सूक्ष्म तत्व आकाश है। इसका मुख्य गुण शब्द है। प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है। इसका विस्तार कला के लिए जरूरी है। आकाश जनित शब्द के भी सात भेद बताये गये हैं। ये सात सुर हैं। संगीत का आधार है। संगीत शास्त्र में इन सात सुरों का स्पष्ट वर्णन है। इन्हें सडज, ऋषम, गांधार, मध्यम, पंचम, धवेत, निषाद कहा गया है। संक्षेप में सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि कहे जाते हैं। सुरों का मुख्य केंद्र आकाश है। आकाश सब तरफ व्याप्त है। महाभारत में वाद्य यंत्रों का उदाहरण देखते हुए कहते हैं, ''नगाड़े आदि में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। मृदंग, शंख, बादल और रथ की गति में सुनी गयी ध्वनि इन्हीं सुरों के भीतर है।

शरीर और मन का संबंध सुस्पष्ट है लेकिन विचित्र है। चरक संहिता आयुर्वेद का ग्रंथ है। यहाँ 'आयु' की परिभाषा दी गयी है, ''शरीर इन्द्रिय मन आत्मा के संयोग को आर्यु कहते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आयु में शरीर और आत्मा दोनों सम्मिलित हैं। मन और इन्द्रिय तो शरीर का भाग है ही लेकिन आत्मा को अधिकांश विद्वान अलग मानते हैं। अजर अमर बताते हैं। चरक संहिता में सबको द्रव्य कहा है। यहाॅं 9 द्रव्य कहे गये हैं। पहला आकाश है। दूसरा वायु, तीसरा अग्नि है। चैथा जल, पाँचवा पृथ्वी, छठवां आत्मा है, सातवां मन है, आठवां काल है और नौवां दिशा। आत्मा को महाभारत के गीता वाले अंश में अजर, अमर, अविनाशी कहा गया है। लेकिन चरक संहिता में आत्मा मन और काल दिशा द्रव्य हैं। शरीर में वात, पित्त और कफ यह तीनों दोष हैं। इनका संतुलन जरूरी है। जैसे शरीर के तीन दोष और गुण बताये गये हैं वैसे ही मन के आधार पर भी मन और भावना के आधार पर विश्लेषण किया गया है। जीवन विज्ञान में रस की बहुत चर्चा है। बताते हैं कि मनुष्य जो खाता है उससे रस का बोध होता है। रस का लक्षण बताते हैं, ''रसना के अर्थ का मन रस है'' रसना भावनात्मक संज्ञा है। प्रत्यक्ष में इसका मन जीभ है। उपनिषदों में धर्म को पृथ्वी का रस बताया गया है। रस का आधार द्रव्य, जल पृथ्वी है। रस का जन्म भी जल और पृथ्वी से होता है। मधुर और कटु रसबोध को प्रकट करने वाले शब्द हैं। मानसिक एकाग्रता जरूरी है। विद्वान व्यक्ति का भी मन इधर-उधर भागता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए मन की एकाग्रता जरूरी है। बताते हैं मन के अधीन मन की प्रेरणा से मन के साथ इन्द्रिय अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं।

सौंदर्य बोध में भी मन की भूमिका है। मन लगता है तो पास पड़ोस, उबड़-खाबड़, जंगल भी उपवन का मजा देते हैं। मन न लगे तो सुंदर उपवन भी व्यर्थ हो जाते हैं। मन को ज्ञानमय व कल्याणकारी बनाने के लिए यजुर्वेद में 6 मंत्रों का उल्लेख एक साथ किया गया है। ऋषि ने कहा है कि हमारा मन शक्तिशाली है। इधर-उधर भागता है। यहाँ-वहाँ धरती आकाश में भागता है। ऋषि की प्रार्थना है,[21] ऐसा हमारा चंचल मन कि शिव संकल्पों से भरा-पूरा है- तन्मे मनः शिव संकल्पम अस्तु। सभी 6 मंत्रों के अंन्त में तनमे मनः शिव संकल्पम् अस्तु की टेक दोहराई गयी है।

निष्कर्ष

शरीर थकता है, मन नहीं थकता। शरीर विश्राम में जाता है, इन्द्रियां विषयों से मुक्त होती हैं। हम सब निद्रा में होते हैं। तब मन मुक्त होकर अपना काम और भी तेज रफ्तार से करता है। तमाम सपने गढ़ता है। हम तारों भरे आकाश की यात्रा पर होते हैं, किसी नदी के तट पर या समुद्र के किनारे नितांत अपरिचित क्षेत्र में टहलने का मजा लेते हैं। कैसे होता है यह सब? विज्ञान के पास इसका ठोस उत्तर नहीं है। सोते हुए ऐसे क्षेत्रों, दृश्यों में रमना स्वप्न कहा जाता है। स्वप्नों का यह संसार हरेक जिज्ञासु के लिए रहस्यपूर्ण है।
अतिशक्तिशाली श्रीमान और गतिमान हैं मन। ऋषियों ने उन्हें 'चंचल' कहा है। इस चंचलता का सबसे रोचक पहलू है- वर्तमान से असंतोष। असंतोष दुख देता है लेकिन असंतुष्ट मनोदशा के फायदे भी हैं। हम असंतुष्ट होकर परिस्थिति बदलने के लिए सक्रिय भी होते हैं। सक्रियता की भी प्रेरक शक्ति है मन। आशा और अभिलाषा मन के रचे प्रपंच होते हैं। लेकिन सत्य संपूर्ण चेतन है, जहां सत्य होगा वहां मन नहीं होगा। पतंजलि के योग सूत्रों में खूबसूरत महाविज्ञान है। उनका लक्ष्य ही है योगश्चित्तवृत्ति निरोध। चित्त वृत्तियों का माफिया है- मन। पतंजलि ने योग में इसी माफिया के नियंत्रण की तकनीकी बताई है। बताया है कि ''तब साक्षी स्वयं में स्थापित हो जाता है।''[21]

संदर्भ

1. 1.1 ऋतुसंहार
2. ↑ 1,22, मेघदूत
3. ↑ 1.3, मेघदूत
4. ↑ रघुवंश महाकाव्य 13।24, 25
5. ↑ 1.29, मेघदूत
6. ↑ 4.18 रघुवंश
7. ↑ 3.54 कुमारसम्भव
8. ↑ 5.54 रघुवंश

9. ↑ पश्य पश्चिमदिगंतलम्बिना निर्मित मितकथे विवस्वता।
दीर्घया प्रतिमया सरोम्भयां तापनीयमिव सेतुबन्धनम्॥ कुमारसम्भव 8।34
10. ↑ एष वृक्षशिखरे कृतास्पदो जातरूपरसगौरमण्डलम्।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिबतीव बर्हिण:॥ कुमारसम्भव, 8।36
11. ↑ पूर्वभागतिमिरप्रवृत्तिभिर्व्यक्तपङ्कमिव जातमेकत:।
खं हृतातपजलं विवस्वता भाति किञ्चिदिव शेषवत्सर:॥कुमारसम्भव - 8।37
12. ↑ शीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजंत्यमी॥कुमारसम्भव -8।31
13. ↑ शीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजंत्यमी॥कुमारसम्भव -8।39
14. ↑ शीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजंत्यमी॥कुमारसम्भव -8।45
15. ↑ शीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजंत्यमी॥-8।46
16. ↑ कुमारसम्भव 8।53
17. ↑ कुमारसम्भव8।54
18. ↑ -8.62,कुमारसम्भव
19. ↑ -8।72 कुमारसम्भव
20. ↑ -8.63, कुमारसम्भव
21. ↑ 17.41, कुमारसम्भव